मध्यस्थ दर्शन में प्रतिपादित मूल बिन्दु

स्रोत: मानव व्यवहार दर्शन / ए नागराज / १९७६

सत्ता मध्यस्थ है, व्यापक है । प्रकृति सम-विषम और मध्यस्थ क्रिया है, सीमित है । इसलिये सत्ता स्थिति पूर्ण है ।

प्रकृति स्थितिशील है, इसलिये सत्ता में प्रकृति समायी हुई है । अत:, सत्ता में प्रकृति ओत-प्रोत है । अस्तु, सत्ता में प्रकृति सम्पृक्त है | इसलिये ही प्रकृति पूर्णतया ऊर्जा सम्पन्न है । अस्तु, प्रकृति क्रियाशील है । अत: प्रकृति श्रम, गति एवं परिणाम के लिए बाध्य है । फलस्वरूप प्रकृति ही चार अवस्थाओं में प्रत्यक्ष है । इसलिए सत्ता में प्रेरित प्रकृति उसका अनुभव करने की क्षमता, योग्यता एवं पात्रता से संपन्न होने पर्यंत विकाशील है | फलत: परिणाम का अमरत्व (अंतिम परिणिति), श्रम का विश्राम, एवं गति का गन्तव्य वस्तुस्थिति, वस्तुगत एवं स्थिति सत्य के रूप में प्रत्यक्ष है | चैतन्य प्रकृति ज्ञानावस्था में अनुभव करने की क्षमता, योग्यता एवं पात्रता से सम्पन्न होने के अवसर समीचीन है तथा चारों अवस्थाएं एक दूसरे से पूर्णता संपूर्णता के अर्थ में अनुबंधित है ।

सत्ता मध्यस्थ है । इसलिये मध्यस्थ सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति नियंत्रित एवं संरक्षित है । प्रत्येक परमाणु में पाये जाने वाला मध्यांश (नाभिक) मध्यस्थ क्रिया है । इसलिये सम-विषमात्मक क्रियाएं एवं सापेक्ष शक्तियाँ नियंत्रित एवं संरक्षित है ।

अनन्त क्रिया अथवा क्रिया-समूह ही प्रकृति है, जो जड़ और चैतन्य के रूप में गण्य है । जड़ प्रकृति ही विकासपूर्वक चैतन्य पद को पाती है यह नियति विधि से सम्पन्न रहता है । मानव जड़ एवं चैतन्य का संयुक्त रूप है | साथ ही प्रकृति का अंश भी है ।

विकास के क्रम में ही गठनपूर्णता, क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता है । गठन, क्रिया तथा आचरण पूर्णता से अमरत्व, जागृति तथा जागृतिपूर्णता सिद्ध है | मानव कम विकसित प्रकृति के साथ व्यवसायपूर्वक उपयोग, उपभोग, शोषण और पोषण करता है । मानव का मानव के साथ व्यवहार, अधिक जागृत के साथ गौरव करने के लिए बाध्य है तथा अधिक जागृति के लिये अभ्यास, अध्ययन एवं चिंतन करता है ।

भ्रमित मानव ही कर्म करते समय स्वतंत्र एवं फल भोगते समय परतंत्र है ।

इस पृथ्वी पर मानव जागृति क्रम में है । उसे जागृतिपूर्ण होने का अवसर, वांछा एवं संभावना प्राप्त है । जागृत मानव का कम विकसित के लिए सहायक होना ही उसका प्रधान लक्षण है ।

पदार्थावस्था से प्राणावस्था विकसित, प्राणावस्था से जीवावस्था विकसित, तथा जीवावस्था से भ्रांति ज्ञानावस्था का पशु मानव विकसित है । भ्रांति ज्ञानावस्था के पशु मानव से भ्रांत राक्षस मानव विकसित, भ्रांत राक्षस मानव से भ्रांताभ्रांत मानव विकसित तथा भ्रांताभ्रांत मानव से निर्भ्रान्त देव मानव विकसित है । निर्भ्रान्त देवमानव से दिव्यमानव विकास पूर्ण है ।

ज्ञानावस्था की इकाई दर्शन क्षमता सम्पन्न है । दर्शन, जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के संदर्भ में है । सत्ता में ज्ञान होता है |

निर्भ्रम अवस्था में ही अनुभव ज्ञान व दर्शन पूर्ण होता है । इसलिये -

निर्भ्रमता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही संप्रभुता, संप्रभुता ही प्रभुसत्ता, प्रभुसत्ता ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था है । प्रबुद्धता ही प्रभुता, प्रभुता ही सत्ता है | सत्ता ही नियम, न्याय, धर्म व सत्य है |

“मानव ही मानव के ह्रास व विकास में प्रधानत: सहायक है ।”

सम्पूर्ण वांडमय डाउनलोड:

www.madhyasth.org | www.bit.ly/dpsroot